भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन में संत समाज का योगदान

डॉ0 प्रभा गौतम,

एसोसिएट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, विद्यान्त हिन्दू पी0जी0 कॉलेज, लखनऊ, उ0प्र0

शोध सारांश

भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन में संत समाज द्वारा प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष भूमिका का निर्वाह किया गया। स्वामी दयानन्द सरस्वती, स्वामी श्रद्धानन्द, स्वामी विवेकानन्द, महर्षि अरविन्द, सत्यदेव परिव्राजक, एनी बेसेन्ट, सहजानन्द सरस्वती जैसे महान संतों का मार्गदर्शन भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन को प्राप्त हुआ, जिन्होंने भारतीय धर्म, संस्कृति के पुनर्जागरण में महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह कर भारत के राष्ट्र निर्माण में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। संत समाज द्वारा धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, आध्यात्मिक, शैक्षणिक क्षेत्रों में विशिष्ट कार्य करके, देश के जनमानस को स्वशासन, स्वतन्त्रता की आवश्यकता से परिचित कर, देश को स्वतन्त्रता के लिए आन्दोलन करने के लिए तैयार किया।

मुख्य शब्द– *आन्दोलन, स्वतन्त्रता, संत, हिन्दू, समाज, शिक्षा, राष्ट्र, राष्ट्रवाद*

भारत में एक महान संत परम्परा रही है जिसने समाज, धर्म, संस्कृति, सभ्यता को नवीन दिशा प्रदान की। भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन को भी संत समाज द्वारा मार्गदर्शन प्राप्त हुआ। आर्य समाज के संस्थापक दयानन्द सरस्वती, स्वामी श्रद्धानन्द, स्वामी विवेकानन्द, महर्षि अरविन्द, सत्यदेव परिव्राजक, एनी बेसेन्ट, दण्डी सन्यासी सहजानन्द सरस्वती जैसे महान संतों द्वारा स्वतन्त्रता आन्दोलन को वैचारिक मार्गदर्शन तो प्राप्त हुआ ही, साथ ही साथ कुछ संतों द्वारा आन्दोलन में प्रतिभाग कर अपना महान योगदान दिया गया। राष्ट्रीय आन्दोलन में संत समाज की भूमिका ज्ञात करने के लिए उनके द्वारा किये गये महान कार्यों का अवलोकन आवश्यक है।

12 फरवरी सन् 1824ई0 को गुजरात के एक ब्राह्मण परिवार में जन्मे मूलशंकर चौबीस वर्ष की आयु में स्वामी पूर्णानन्द सरस्वती से दीक्षा के उपरान्त दयानन्द सरस्वती के नाम से प्रसिद्ध हुए। हिन्दू धर्म में व्याप्त दोषों से वह बहुत विचलित थे जिनसे मुक्ति के लिए उन्होंने हिन्दू धर्म के आधारों वेद व अन्य शास्त्रों का गहन अध्ययन किया, तत्पश्चात वह इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि हिन्दू धर्म की सुदृढ़ता और वर्तमान में आये दोषों से मुक्ति का समाधान आधुनिक परिस्थिति के अनुसार वेदाचरण करने में है, अतः उन्होंने भारतीय समाज का 'वेदों की ओर लौटो' का आह्वान किया। उन्होंने भारतीय समाज में फैली जाति प्रथा, छुआछूत, विधवा विवाह, बाल–विवाह आदि कुरीतियों और अन्धविश्वासों को दूर करने के लिए हिन्दू समाज का आह्वान किया। अपने इन लक्ष्यों की पूर्ति के लिए 10 अप्रैल 1875 को उन्होंने बम्बई में आर्यसमाज की स्थापना की जिसका मुख्यतः कार्यक्षेत्र उत्तर भारत रहा।

स्वामी दयानन्द की प्रथम रचना 'ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका' ने विश्व को यह स्वीकार करा दिया कि वेद विश्व के प्राचीनतम ग्रन्थ हैं जिनके अनुसार ईश्वर सृष्टि का निर्माण और

विनाश करता है। उनकी दूसरी प्रमुख महत्त्वपूर्ण रचना 'सत्यार्थ प्रकाश' है जिसमें मानव जीवन के आध्यात्मिक, सांस्कृतिक, शैक्षणिक, सामाजिक, राजधर्म, शासन, गृहस्थ, शारीरिक शक्ति एवं नैतिकता सहित सभी पक्षों को समाहित किया है। उनकी सभी रचनाएँ देशभक्ति व राष्ट्रप्रेम से ओतप्रोत हैं। भारत में उन्होंने सर्वप्रथम 1876 में 'स्वराज्य' का नारा दिया था। वह गणतन्त्र की स्थापना के प्रबल समर्थक थे। स्वामीजी के विचारों ने भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम का मार्गदर्शन किया है। उन्होंने स्त्रियों व दलितों की शिक्षा पर विशेष बल दिया है।

स्वामी दयानन्द सरस्वती द्वारा स्थापित आर्यसमाज ने हिन्दू धर्म में व्याप्त कुरीतियों, आडम्बरों को दूर करने, हिन्दू धर्म छोड़कर विधर्मी हुए व्यक्तियों की घरवापसी, देशवासियों में स्वाभिमान व देशभक्ति उत्पन्न करने, सामाजिक समानता स्थापित करने व शैक्षणिक विकास के लिए महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। स्वामी दयानन्द ने वर्ग, देश, जाति का विरोध कर मनुष्य मात्र की एक जाति, एक धर्म, एक लक्ष्य स्थापित करने का उद्देश्य रखा। वह मनुष्यों की समानता के पक्षधर थे, उनका मत था कि मनुष्य के छोटे–बड़े का मापदण्ड केवल उसके अच्छे–बुरे कर्मों से हो सकता है। देशवासियों में राष्ट्रीय स्वाभिमान उत्पन्न करने के लिए उनके वेद भाष्यों ने महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया है। उनके द्वारा ईसाई धर्म के प्रचार–प्रसार को रोकने का भी भरसक प्रयत्न किया गया। स्वामी दयानन्द के दर्शन और कृतित्व को किसी सीमा में नहीं बाँधा जा सकता। वह सम्पूर्ण जीवन 'सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे भवन्तु निरामयः। सर्वे भद्राणि पश्यन्तुः मा कश्चितः दुख भाग भवेत्।। वैदिक मन्त्र का उपदेश देते रहे। स्वामी दयानन्द पहले व्यक्ति थे जिन्होंने घोषणा की थी कि ''विदेशी राज्य कितना भी अच्छा क्यों न हो, स्वराज से अच्छा नहीं हो सकता।''

इस प्रकार दयानन्द सरस्वती का हिन्दू धर्म के पुनरुत्थान के साथ भारत के सांस्कृतिक व राष्ट्रीय नवजागरण में भी महत्त्वपूर्ण योगदान है। उन्होंने राष्ट्र को सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, राष्ट्रीय दृष्टि से देश को एक नया दृष्टिकोण दिया। उनके द्वारा स्थापित संस्था 'आर्य समाज' का उनकी मृत्यु के उपरान्त भी राष्ट्रीय जाग्रति में महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। सम्पूर्ण देश में गुरुकुलों, डी0ए0वी0 स्कूल व कॉलेजों की स्थापना कर शैक्षणिक क्रान्ति उत्पन्न कर राष्ट्रीय क्रान्ति का आधार बनाने में आर्य समाज का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है।

स्वामी श्रद्धानन्द भी आर्यसमाजी थे। सन्यास ग्रहण करने से पूर्व उन्होंने वैदिक बह्मचर्याश्रम की शिक्षा हेतु हरिद्वार के कांगड़ी में गुरुकुल की स्थापना की जो वर्तमान में गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के नाम से प्रसिद्ध है। सोलह वर्षों तक इस शिक्षण संस्थान के प्रधानाचार्य व मुख्य अधिष्ठाता के रूप में उन्होंने कार्य किया, तदोपरान्त सन्यास लेकर उन्होंने समाजसेवा, आर्य समाज व हिन्दू सभा के लिए कार्य किया। सार्वजनिक जीवन के प्रारम्भिक काल में स्वामी श्रद्धानन्द को अंग्रेज शासकों के कार्यों एवं उद्देश्यों में विश्वास था, वह कांग्रेस के अधिवेशनों में भी सम्मिलित हुए। बाद में महात्मा गाँधी के रॉलेट एक्ट के विरुद्ध, सत्याग्रह के आह्वान पर उसमें सम्मिलित हुए और इस प्रदर्शन में गोरखा सैनिकों द्वारा गोली चलाने को लेकर उद्यत सैनिकों के सामने खड़े होकर अपने साहस और निर्भीकता का परिचय दिया। हिन्दू–मुस्लिम एकता व हिन्दू समाज के दलित वर्ग के उद्धार का भी उन्होंने समर्थन किया। सन् 1920 में उन्होंने दिल्ली में दलितोद्धार सभा की भी स्थापना की।

असहयोग आन्दोलन की समाप्ति के पश्चात परिषदों में प्रवेश के प्रश्न व असहयोग आन्दोलन की समाप्ति के तरीके पर मतभेद के

कारण उन्होंने कांग्रेस से त्यागपत्र दे दिया। हिन्दू समाज की शक्तिशाली आध्यात्मिक श्रेष्ठता को स्थापित करने के लिए उन्होंने 1923 में 'हिन्दू शुद्धि सभा' की स्थापना की, साथ ही दलितों के लिए उद्धार कार्यक्रम भी किये। तीन वर्षों तक वह हिन्दू महासभा के उपाध्यक्ष भी रहे लेकिन महासभा के 1926 के चुनाव में सहभागिता के निर्णय के प्रश्न पर उन्होंने हिन्दू महासभा की सदस्यता से त्यागपत्र दे दिया, चूँकि राजनीति में वह साम्प्रदायिक नीति का सम्बल नहीं लेना चाहते थे। स्वामी श्रद्धानन्द एक ओजस्वी वक्ता, समाजसुधारक, निर्भीक धर्मयोद्धा के साथ एक अच्छे लेखक भी थे, उनकी आत्मकथा 'कल्याण मार्ग का पथिक' हिन्दी का एक गौरवशाली ग्रन्थ है। 'स्वामी श्रद्धानन्द के धर्मोपदेश' उनकी प्रमुख पुस्तक है। 'सद्धर्म प्रचारक' पत्रिका के सम्पादन के साथ हिन्दी साप्ताहिक पत्रिका 'श्रद्धा' व अंग्रेजी में 'लिबरेटर' नामक साप्ताहिक पत्रिका की भी स्थापना की।

स्वामी श्रद्धानन्द को भारत की सांस्कृतिक श्रेष्ठता एवं प्रज्ञा में अतिविश्वास था। वह वैदिक ज्ञान के आधार पर भारतीय समाज की स्थापना करना चाहते थे। उन्हें राजनीति में अत्यधिक रूचि के उपरान्त भी वह आर्य समाज को राजनीतिक संगठन नहीं बनाना चाहते थे, उसके कार्यक्षेत्र को वह सामाजिक, धार्मिक क्षेत्र तक ही सीमित रखना चाहते थे। स्वामी श्रद्धानन्द नैतिकता को राष्ट्रवाद का आधार बनाना चाहते थे, उनका मानना था कि यदि देश को स्वराज्य के लिए तैयार करना है तो देश में शारीरिक एवं नैतिक संरक्षण आवश्यक है। उद्देश्य प्राप्ति के लिए 'सत्याग्रह' में उन्हें विश्वास था लेकिन तत्कालीन भारतीय परिस्थिति में वह इसे अनुकूल नहीं मान रहे थे। अहिंसात्मक असहयोग के बारे में भी वह गाँधीजी से मतभेद रखते थे, उन्होंने कहा कि– ''मैं गाँधीजी की इस बात के लिए आलोचना करता हूँ कि वे हिन्दुओं के मूल धर्मग्रन्थों को पढ़े बिना ही हिन्दू धर्म के सिद्धान्तों पर अपने व्यक्तिगत विचारों को अधिकारपूर्ण ढंग से व्यक्त करते हैं, फिर भी मैंने उनके साथ इसलिए काम किया है मेरी राय में इस समय उनका आन्दोलन देश की मुक्ति का एकमात्र साधन है।'' (द लिबरेटर में प्रकाशित लेख, कांग्रेस इन्क्वायरी कमेटी नामक लेख, प्देपकम ब्वदहतमेए चंहम 156)। आन्दोलन और परिषदों में प्रवेश से ज्यादा स्वामी श्रद्धानन्द देश के नैतिक तथा सामाजिक पुनरुत्थान पर बल देकर नागरिकों को अनुशासित कर रचनात्मक कार्यों के लिए तैयार करना चाहते थे।

स्वराज्य प्राप्ति के लिए स्वामी श्रद्धानन्द द्वारा चार सूत्र बताये गये, प्रथम– साम्प्रदायिक एकता तथा संयुक्त पंचायत द्वारा पारस्परिक मतभेदों का निवारण कर भारत की एकता स्थापित की जाय, द्वितीय– स्वदेशी प्रयोग, तृतीय– हिन्दी का राष्ट्रीय भाषा के रूप में प्रयोग, चतुर्थ– एक स्वतन्त्र राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली का विकास। सार्वभौमिक भातृत्व की स्थापना के लिए वह मातृभूमि भक्ति को प्रथम आवश्यकता मानते थे। तात्कालिक लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए वह तुष्टीकरण की नीति के विरुद्ध थे, 'वैदिक स्वराज्य' उनका लक्ष्य था, अधिकारों के साथ ही वह गाँधीजी की तरह कर्त्तव्यपालन को महत्त्व देते थे। व्यक्तिगत चरित्र का शुद्धिकरण व दलितों के उद्धार को उन्होंने स्वराज का सार बताया।

स्वामी विवेकानन्द के विचारों का स्वतन्त्रता संग्राम के समय राष्ट्र निर्माण व पुनर्जागरण में महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। स्वामी विवेकानन्द अत्यन्त विलक्षण प्रतिभा के धनी थे, वह सन्यासी, विचारक, प्रचारक एवं दार्शनिक थे। उन्होंने प्रत्यक्षतः राजनीति में कभी सहभागिता नहीं की, किन्तु अपने प्रखर व्यक्तित्व और प्रतिभा से राष्ट्रभक्ति, राष्ट्र गौरव, राष्ट्रीय संस्कृति की एक ऐसी ज्योति प्रज्ज्वलित की, जिसने भारतीय स्वतन्त्रता के लिए एक मानसिक एवं वैचारिक आधार का निर्माण किया। आध्यात्मिक विचार उन्हें

पारिवारिक पृष्ठभूमि से प्राप्त हुए, जिनका परिष्करण और स्थायित्वकरण, रामकृष्ण परमहंस के शिष्य बनने के उपरान्त हुआ। उनकी प्रमुख कृतियाँ 'भारत और उसकी समस्यायें', 'आधुनिक भारत', 'जनता जनार्दन के प्रति हमारे कर्त्तव्य', 'अधिकारवाद की बुराइयाँ' है। इसके अतिरिक्त उनके प्रमुख व्याख्यानों से हमें उनके सामाजिक और राजनीतिक विचारों का ज्ञान होता है।

विवेकानन्द मानव समुदाय की सेवा को ही ईश्वर प्राप्ति का साधन मानते थे। उन्होंने 'दरिद्र नारायण' की संकल्पना प्रस्तुत की, वह वर्ण–व्यवस्था के विरोधी नहीं थे। सभी वर्गों में समानता स्थापित करने के उन्होंने अस्पृश्य और उपेक्षित वर्ग की शिक्षा पर बल दिया, उनके अनुसार यदि निर्धन शिक्षा तक नहीं पहुँच पाते तो स्वयं शिक्षा को खेत, कारखाने या कहीं भी काम करने वाले लोगों के पास पहुँच जाना चाहिए। एक सम्पूर्ण राष्ट्र निर्माण के लिए उनका मत था कि इसके लिए चतुवर्ण की विशेषताओं का ज्ञान, पराक्रम, समृद्धि, समानता, कार्यकुशलता का समन्वय होना चाहिए, किसी भी आदर्श राज्य में एक वर्ग को वरीयता प्राप्त नहीं होनी चाहिए।

विवेकानन्द आध्यात्मिक विचारक होने के उपरान्त भी समकालीन परिस्थितियों से विमुख नहीं थे, उनका मानना था कि आध्यात्मिक साधना आध्यात्मिक स्वतन्त्रता की माँग करती है, पराधीन देश की स्वतन्त्रता की चिन्ता छोड़कर आध्यात्मिक स्वतन्त्रता की तलाश व्यर्थ है। उन्होंने आत्मा के अमरत्व तथा मानव गरिमा के महत्त्व को आधार मानकर बंधनों से मुक्ति प्राप्त करने का आह्वान किया। उनका प्रमुख गीत देशप्रेमियों का प्रेरणास्रोत बना।

तोड़ फेंको बेड़ियाँ, बन्धन जो बाँधे तुम्हें
चाहे स्वर्णिम कनक के, या हों भद्दे धातु के।

उनका मानना था कि जीवन में सुख और समृद्धि की एकमात्र शर्त चिन्तन और कार्य में स्वतन्त्रता है, जिस क्षेत्र में यह नहीं है उस क्षेत्र में मनुष्य जाति और राष्ट्र का पतन होगा। स्वतन्त्रता मनुष्य का प्राकृतिक अधिकार है जो समाज के सभी सदस्यों को समान रूप से प्राप्त होना चाहिए। स्वामी विवेकानन्द सामाजिक बुराइयों व आडम्बरों के विरोधी थे। उनका मानना था कि जो सामाजिक नियम स्वतन्त्रता की सिद्धि में बाधक हो, उन्हें तुरन्त समाप्त कर स्वतन्त्रता की सिद्धि में सहायक तत्त्वों को बढ़ावा देना चाहिए।

धर्म को वह भारत की प्राणवायु मानते थे क्योंकि भारत की सृजन प्रतिभा की अभिव्यक्ति मुख्यतः धर्म के क्षेत्र में हुई है, लेकिन धर्म में पाखण्ड, अन्धविश्वास, झूठ, अज्ञानता के प्रवेश के कारण समाज का पतन हुआ है। विवेकानन्द ने राष्ट्रवाद की धार्मिक व्याख्या कर उसे नवीन स्वरूप में प्रस्तुत किया। उन्होंने धर्म में विश्वास और कर्म में लगन का मन्त्र दिया। वह लोगों के उत्थान के लिए धार्मिक आस्था को आवश्यक मानते थे, लेकिन उससे भी आवश्यक गरीबी और अशिक्षा को दूर करना आवश्यक मानते थे। भारत की गरीबी के कारण वह समाजवाद की ओर आकृष्ट हुए। कुछ दृष्टिकोण से वे पश्चिमी राष्ट्रों से भी प्रभावित हुए, जैसे–जनसाधारण के हितों से सरोकार, स्त्री–सम्मान, संगठन की क्षमता का विकास और भौतिक समृद्धि।

विवेकानन्द ने भारतीयों के हृदय में यह भावना पैदा करने की चेष्टा की कि बिना शक्ति के हम अपने अस्तित्व की रक्षा नहीं कर सकते, शक्ति ही धर्म है, अतः निर्भीक बनो, उनका यह विचार जनसाधारण को स्वाधीनता के संघर्ष के लिए मानसिक रूप से तैयार कर रहा था। व्यवहारिक राजनीति से विवेकानन्द का प्रत्यक्षतः सम्बन्ध नहीं था, लेकिन ब्रिटिश साम्राज्यवाद के नैतिक आधार को उन्होंने चुनौती दी। भारतीय संस्कृति एवं धर्म को उन्होंने श्रेष्ठ सिद्ध करते हुए विदेशी शासन को निरर्थक सिद्ध किया, पश्चिम के अन्धानुकरण का उन्होंने विरोध किया, उन्होंने

''गर्व से कहो मैं भारतीय हूँ, सारे भारतीय मेरे बन्धु हैं'' का उद्घोष किया। इस प्रकार विवेकानन्द ने भारत को पुनः आत्मसम्मान प्रदान कराकर राष्ट्र के भूतकालिक सुसुप्त अभिमान को पुनः जाग्रत किया।

महर्षि अरविन्द द्वारा प्रारम्भ में भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम में एक युवा क्रान्तिकारी के रूप में सहभागिता की गई और उसके बाद वे योगी बने। उनके द्वारा आई0सी0एस0 की परीक्षा उत्तीर्ण कर ली गयी थी, लेकिन घुड़सवारी की परीक्षा के कारण चयन नहीं हो पाया था। उन्होंने अंग्रेजी भाषा के साथ जर्मन, फ्रेंच, ग्रीक, इटैलियन आदि भाषाओं का भी अध्ययन किया। कर्जन के बंगाल विभाजन से आक्रोशित भारतीय राजनीतिक पर्यावरण से अरविन्द घोष स्वयं को अलग नहीं रख सके और इस आन्दोलन में सक्रिय रूप से भाग लिया, उन्होंने स्वदेशी आन्दोलन को भी प्रारम्भ किया। भयभीत ब्रिटिश सरकार द्वारा 2 मई 1908 को 'अलीपुर षडयंत्र केस' में इन्हें गिरफ्तार कर जेल भेज दिया गया। घोष के केस की वकालत प्रसिद्ध बैरिस्टर चितरंजन दास द्वारा की गई और वह सभी अभियोगों से मुक्त हो गये। एक वर्ष तक जेल में रहने के दौरान उन्हें हिन्दू धर्म, हिन्दू राष्ट्र सम्बन्धी आध्यात्मिक अनुभूति हुई और वह क्रान्तिकारी से आध्यात्मिक गुरु बन गये। सन् 1910 में वह पाण्डिचेरी गये व योग द्वारा सिद्धि प्राप्त की, उन्होंने वहाँ वेद उपनिषद्, योग साधना पर ग्रन्थ लिखे। उनकी प्रमुख पुस्तक 'लाइफ डिवाइन' (दिव्य जीवन) विश्वप्रसिद्ध पुस्तक हैं।

महर्षि अरविन्द आध्यात्मिक राष्ट्रवाद के समर्थक थे, वह राष्ट्रवाद को धर्म मानते थे, उनका मत था कि भारत हमारी माता है, इसकी मुक्ति का प्रयास करना हमारा धर्म है, उनका राष्ट्रवाद संकुचित न होकर अन्तर्राष्ट्रीयतावाद पर आधारित था, वह सम्पूर्ण मानव जाति को ईश्वर का अंग मानते थे। व्यक्तित्व के विकास के लिए उन्होंने स्वतन्त्रता को आवश्यक माना, उनका मत था कि भय, लाभ, वासना से व्यक्ति यदि मुक्त हो जाता है तो वह आन्तरिक स्वतन्त्रता प्राप्त कर लेता है। अपनी इच्छानुसार आचरण की स्वतन्त्रता को वह वाह्य स्वतन्त्रता मानते थे, जिसकी प्राप्ति के लिए राज्य के नियन्त्रण को प्रतिबन्धित करना चाहिए। वह शक्तियों के विकेन्द्रीकरण के पक्ष में थे। शासन प्रणाली में वह लोकतन्त्र को श्रेष्ठ मानते थे लेकिन उनका विचार था कि इसमें बहुमत की तानाशाही का भय है, साथ ही धनी और सम्भ्रान्त वर्ग में शासन सीमित होकर रह जाता है। महर्षि अरविन्द के अनुसार राष्ट्रवाद एक केवल राजनीतिक कार्यक्रम नहीं है अपितु धर्म है जो ईश्वरीय देन है। स्वराज्य की आवश्यकता राष्ट्रवाद का अभिन्न अंग है क्योंकि परतन्त्र राष्ट्र में उसकी विलक्षण प्रतिभायें और अस्तित्व सुरक्षित नहीं रह सकता, उनका मत था कि विदेशी शासन में भारत अपना पुनरुत्थान नहीं कर सकता, अतः राष्ट्रीय आन्दोलन का लक्ष्य स्वशासन स्थापित कर राष्ट्र का पुनर्निर्माण कर अपने अन्तिम लक्ष्य आध्यात्मिकता के साक्षात्कार पर पहुँचना है, इस लक्ष्य की प्राप्ति कर भारत सम्पूर्ण मानवता को मुक्ति का मार्ग प्रशस्त कर अपने कर्त्तव्य का पालन कर सकता है। श्री अरविन्द ने स्वशासन प्राप्ति के लिए नरम दल की 'याचना पद्धति' के विरुद्ध 'शान्तिपूर्ण प्रतिरोध' के मार्ग को अपनाने पर बल दिया, जो आगे गाँधीजी के 'सत्याग्रह' में परिवर्तित हुआ। 'निष्क्रिय प्रतिरोध' में विदेशी बहिष्कार व स्वदेशी आन्दोलन भी समाहित हैं।

सत्यदेव परिव्राजक आर्यसमाज के सन्यासी थे, धार्मिक क्षेत्र में वह दयानन्द सरस्वती, स्वामी रामतीर्थ और राजनीतिक क्षेत्र में लाला लाजपतराय और गोखले से प्रभावित रहे। उन्होंने राष्ट्रवाद की व्याख्या व प्रचार करने के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण कार्य कर भारतीयों को शुद्ध राष्ट्रवाद का सन्देश दिया। सत्यदेव परिव्राजक द्वारा, स्वावलम्बन, श्रम की गरिमा, मानव अधिकार,

शारीरिक बल की आवश्यकता, वाक, धार्मिक एवं सामाजिक स्वतन्त्रता, राष्ट्र संगठन, हिन्दू संस्कृति व भारतीयता की श्रेष्ठता के महत्त्व को अपने भाषणों, वक्तव्यों एवं लेखन के माध्यम ये जनता तक पहुँचाया। महात्मा गाँधी की प्रेरणा से वह 1918 में दक्षिण भारत में हिन्दी के प्रचार–प्रसार के लिए उन्होंने कार्य किया। उनके द्वारा असहयोग आन्दोलन, स्वराज पार्टी के आन्दोलन एवं चम्पारण सत्याग्रह में भी भाग लिया गया।

असहयोग आन्दोलन में अंग्रेजी स्कूल कॉलेजों के बहिष्कार का समर्थन उनके द्वारा बहुत ओजपूर्ण तरीके से कर आन्दोलन के पक्ष में वातावरण तैयार किया गया। 1925 में उन्होंने मोतीलाल नेहरु के स्वराज दल में सम्मिलित होकर दल के प्रत्याशियों का समर्थन किया। वह क्रान्तिकारी नहीं थे लेकिन अंग्रेज सरकार द्वारा उन पर निरन्तर सन्देह किया जाता रहा, पुलिस अभिलेखों में उन्हें एक आतंकवादी के रूप में वर्णित किया गया है। उन्होंने अपनी प्रमुख रचना 'मनुष्य के अधिकार' में मनुष्यों के राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, वर्णगत अधिकारों का समर्थन किया है। साथ ही उनके द्वारा अधिकारों की प्राप्ति के लिए अपेक्षित शक्ति अर्जित करने पर भी बल दिया गया है। उनके अनुसार मानव अपने राजनीतिक व्यक्तित्व की प्राप्ति स्वराज्य के अन्तर्गत ही कर सकता है।

लन्दन शहर में जन्मी ब्रिटिश मूल की एनी बेसेन्ट, जिन्होंने आयरलैण्ड के होमरूल आन्दोलन में भाग लिया था, सन् 1893 में भारत आयीं, उन्होंने भारत आकर यहाँ की अशिक्षा, अज्ञान, राजनीतिक शिथिलता को दूर करने का प्रण किया, इस उद्देश्य से उन्होंने बनारस में भगवानदास आदि के सहयोग से 'सेण्ट्रल हिन्दू कॉलेज' की स्थापना की, जिसने बाद में पं0 मदन मोहन मालवीय के प्रयत्नों से बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय का स्वरूप धारण किया। शिक्षा के पाठ्यक्रम में उन्होंने धार्मिक शिक्षा की महत्ता पर बल दिया, इसके माध्यम से विद्यार्थियों में नैतिक एवं मानवीय मूल्यों को विकसित किया जा सकता है। उनका भगवद्गीता का अनुवाद तथा 'हिट्स ऑन द स्टडी ऑफ द भगवद्गीता' पुस्तक हिन्दू धर्म, दर्शन के प्रति उनकी आस्था को प्रदर्शित करता है।

एनी बेसेन्ट 1907 में 'थियोसोफिकल सोसाइटी' की अध्यक्ष मनोनीत हुई, जिस पद पर वह जीवनपर्यन्त रही। भारत आगमन के पश्चात् उन्होंने स्वयं को धार्मिक, शैक्षिक, समाजसेवा सम्बन्धी कार्यों तक ही सीमित रखा, लेकिन धीरे–धीरे उनकी रूचि राजनीतिक क्रियाकलापों में भी हुई। उन्होंने अपनी पुस्तक 'वेक अप इण्डिया' के माध्यम से भारतीय राजनीति को जाग्रत करने का प्रयत्न किया। 1916 में उन्होंने 'होमरूल लीग' की स्थापना की। एनी बेसेन्ट के प्रयत्न स्वरूप 1916 में कांग्रेस का एकीकरण हुआ, तत्पश्चात तिलक, जिन्ना, एनी बेसेंट के प्रयत्नों से कांग्रेस लीग समझौता भी हुआ। 1917 के कांग्रेस अधिवेशन की अध्यक्षता एनी बेसेन्ट के द्वारा हुई।

एनी बेसेन्ट ने भारत की प्राचीन संस्कृति एवं सभ्यता को राष्ट्रवाद का आधार माना, उनका मत था कि धार्मिक मान्यतायें व धार्मिक अस्तित्व किसी राष्ट्र के जीवित रहने की शर्त है और हिन्दू धर्म ही भारत की राष्ट्रीय आत्मचेतना का उद्दीपक है। एनी बेसेन्ट का मत था कि समाजवाद व औद्योगिकीकरण को अपनाकर निर्धनता की समस्या दूर की जा सकती है। समाज व देश के सम्पूर्ण विकास के लिए नारी सशक्तिकरण, विधवा विवाह, नारी शिक्षा का उनके द्वारा सशक्त समर्थन किया गया। भारत की वर्ण–व्यवस्था को वह कार्यविभाजन की दृष्टि से श्रेष्ठ मानती थी, लेकिन उसके स्थायीकरण का वह समर्थन नहीं करती थी।

भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन में एनी बेसेन्ट की भूमिका विवाद का विषय है। प्रथम– उनके आगमन का समय जब विवेकानन्द पश्चिमी

देशों में हिन्दू धर्म की श्रेष्ठता स्थापित कर रहे थे, वह हिन्दू धर्म के पुनरुत्थान के लिए भारत आयीं, सन्देह उत्पन्न करता है। द्वितीय– उन्होंने गाँधीजी के अहिंसात्मक असहयोग आन्दोलन का भी समर्थन नहीं किया। तृतीय– वह हिन्दुओं की राजनीतिक गतिविधियों पर अंकुश लगा आध्यात्मिकता की ओर ले जाकर भारत को राजनीतिक नहीं आध्यात्मिक गुरु बनाने के पक्ष में थीं। चतुर्थ– उनके द्वारा अभिजातीय लोकतन्त्र के विचार को समर्थन सम्भवतः भारत में ब्रिटिश शासन की सुदृढ़ता के लिए किया। पंचम– उन्होंने राजनीतिक स्वतन्त्रता के सार्वभौमिक अधिकार को स्वीकार न कर संख्यात्मक के स्थान पर गुणात्मकता का समर्थन किया। षष्ठ– वह हिन्दू धर्म की महत्ता के उद्घोष के आवरण में साम्राज्यवाद का समर्थन कर रही थीं।

स्वामी सहजानन्द सरस्वती आदि शंकराचार्य सम्प्रदाय के 'दसनामी अखाड़े' के 'दण्डी' सन्यासी थे। वह एक बुद्धिजीवी, लेखक, समाजसुधारक, क्रान्तिकारी लेखक, इतिहासकार एवं किसान नेता थे। वह सन् 1936 में हुए कांग्रेस के अधिवेशन में बनी 'अखिल भारतीय किसान सभा' के पहले अध्यक्ष थे, किसानों को उनके अधिकार दिलाने के लिए उनका नारा ''कैसे लोगे मालगुजारी, लट्ठ हमारा जिन्दाबाद'' बहुत प्रसिद्ध हुआ। उन्होंने अपनी शिक्षा–दीक्षा स्वाध्याय और जीवन संघर्ष से प्राप्त की। तिलक की मृत्यु के उपरान्त स्वामीजी द्वारा राजनीति में रूचि लेना प्रारम्भ किया व 'तिलक स्वराज फण्ड' के लिए कोष को भी एकत्रित करने का कार्य किया। सन् 1920 में उन्होंने कांग्रेस में सम्मिलित होकर बिहार के लोगों और कृषकों को असहयोग आन्दोलन के लिए संगठित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया। उनके द्वारा जमींदारी प्रथा के शोषण से मुक्ति, धार्मिक कुरीतियों व आडम्बरों से मुक्ति के लिए समाज सुधारक का कार्य, खादी वस्त्रों के प्रचार, बिहार के प्रलयंकारी भूकम्प में उनके द्वारा किये गये राहत कार्य बहुत उल्लेखनीय हैं। सन् 1927 में पश्चिमी किसान सभा, सन् 1929 में बिहार प्रान्तीय किसान सभा को विस्तारित करने एवं 1936 में अखिल भारतीय किसान सभा को पुनर्गठित करने में उन्होंने महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया, बाद में वह कांग्रेसियों व गाँधीजी के अनुयायियों की कार्यप्रणाली से असहमत होकर कांग्रेस से अलग होकर किसानों के लिए संघर्षरत हो गये। 1930 में नमक कानून आन्दोलन में भाग लेने के कारण छः माह का कारावास भी उन्हें हुआ।

भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन में प्रमुख संतों की भूमिका के विवेचन के उपरान्त निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि भारतीय राष्ट्रनिर्माण में संत समाज का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। प्रमुख संतों के विचारों ने भारत में एक राष्ट्रवादी विचार का आधार निर्मित किया। स्वामी विवेकानन्द का कथन कि ''गर्व से कहो मैं भारतीय हूँ'' और दयानन्द सरस्वती का ''वेदों की ओर लौटो'' के आह्वान ने भारत को एकसूत्र में पिरोने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया। सभी संतों द्वारा सामाजिक क्षेत्र में जाति प्रथा, बाल विवाह, अस्पृश्यता जैसी बुराइयों को दूर करने का प्रयत्न कर सामाजिक एकता स्थापित करने एवं दलितोद्धार जैसे कार्यक्रम चलाकर सामाजिक विषमता को दूर करने का प्रयत्न किया गया। लम्बी दासता के उपरान्त भारत में धार्मिक, आध्यात्मिक, सांस्कृतिक क्षेत्रों में व्याप्त उदासीनता, हीनता एवं चेतनाशून्य वातावरण से मुक्ति दिला, नयी चेतना का संचार करने एवं भारतीय धर्म, संस्कृति, आध्यामिकता को सर्वश्रेष्ठ सिद्ध करने में स्वामी दयानन्द सरस्वती, विवेकानन्द एवं महर्षि अरविन्द का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा। इसके अतिरिक्त देश में शिक्षण संस्थाओं की स्थापना, राष्ट्रीयता स्वाभिमान की भावना के संचार, स्वतन्त्रता और स्वराज्य जैसे विचारों से जनमानस का परिचय कर राष्ट्र को संगठित कर, स्वतन्त्रता आन्दोलन के लिए सुदृढ़ आधार तैयार करने में संत समाज का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा। एनी बेसेन्ट की राष्ट्रीय आन्दोलन

में भूमिका पर कुछ विचारकों द्वारा सन्देह किया जाता है लेकिन सामाजिक, शैक्षणिक, आध्यात्मिक क्षेत्र में उनका योगदान उल्लेखनीय है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. Chandra Bipin, India's Struggle for Independence, Penguin Books India Ltd., Calcutta, 1988
2. Mahajan V.D., Modern Indian History, S. Chand & Company Pvt. Ltd., New Delhi, 1988
3. Puri B.N., The Indian Freedom Struggle - A Survey, M.N. Publishers, New Delhi, 1988
4. अवस्थी डॉ0 ए0, अवस्थी डॉ0 आर0के0, आधुनिक भारतीय सामाजिक एवं राजनीतिक चिन्तन, रिसर्च पब्लिकेशन्स, जयपुर, 2002
5. गाबा ओ0पी0, भारतीय राजनीतिक विचारक, मयूर पेपर बैक्स, नई दिल्ली, 2017
6. ग्रोवर बी0एल0, यशपाल, आधुनिक भारत का इतिहासः एक नवीन मूल्यांकन, एस0 चन्द एण्ड कम्पनी (प्रा0लि0), नई दिल्ली, 1988
7. नागर डॉ0 पुरुषोत्तम, आधुनिक भारतीय सामाजिक एवं राजनीतिक चिन्तन, राजस्थान, हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 1989
8. वर्मा डॉ0 वी0पी0, आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिन्तन, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, 2010–11
9. शर्मा राघव शरण, आधुनिक भारत के निर्माता, स्वामी सहजानन्द सरस्वती पब्लिकेशन डिवीजन, गवर्नमेंट ऑफ इण्डिया, 2004